रूप से मेरे परायण; **माम्** =मेरे; **उपाश्रिताः** =शरण हुए; **बहवः** =बहुत से; **ज्ञान** =ज्ञान; **तपसा** =तपस्या से; **पूताः** =पवित्र हुए; **मद्भावम्** =मेरे दिव्य प्रेम को; **आगताः** = प्राप्त हुए हैं।

अनुवाद

राग, भय और क्रोध से मुक्त होकर मुझमें तन्मय हुए और मेरे ही आश्रित हुए बहुत से मनुष्य पूर्व में मेरे ज्ञान से पवित्र हो चुके हैं। इस प्रकार उन सभी को मेरे दिव्य प्रेम की प्राप्ति हुई है।।१०।।

तात्पर्य

पूर्व वर्णन के अनुसार, विषयों में आसक्त मनुष्य के लिए परमसत्य के दिव्य पुरुषरूप को जानना बड़ा कठिन है। प्रायः मनुष्यों की देह में ही आत्मबुद्धि हो रही है; वे इतने अधिक विषयपरायण हो गये हैं कि उनके लिए यह जानना असम्भव सा हो गया है कि एक ऐसी चिन्मय देह भी है जो नित्य एवं सच्चिदानन्दमय है। सांसारिक देह क्षणभंगुर, अज्ञान से आवृत एवं पूर्णतया दुःखमय है, इसलिए जब उन्हें श्रीभगवान् के दिव्यरूप की जानकारी दी जाती है तो वे उसे भी ऐसा ही समझते हैं। इन विषयी व्यक्तियों के लिए विशालकाय प्राकृत सृष्टि ही परतत्त्व है। यही कारण है कि वे परतत्त्व को निर्विशेष मानते हैं। इसके अतिरिक्त, विषयों में उनकी इतनी स्थूल आसक्ति रहती है कि प्रकृति से मुक्ति के उपरान्त भी जीव और भगवान् अपना-अपना स्वरूप बना रहता है, यह विचार उन्हें भयभीत कर देता है। जब वे सुनते हैं कि मुक्त जीव का अपना स्वरूप रहता है तो उन्हें पुनः स्वरूप-प्राप्ति से भय होता है और इसलिए वे स्वभाव से निर्विशेष शून्य में लीन होने को अधिक उत्तम समझते हैं। वे जीवात्मा को सागर के उन बुदबुदों की उपमा देते हैं जो सागर से उठते हैं और उसी में विलीन हो जाते हैं। उनकी धारणा में यह पृथक् स्वरूप से रहित मुक्त-अस्तित्व की चरम सिद्धि है। परन्तु यथार्थ में तो यह आत्मज्ञान से शून्य जीवन की एक भयावस्था ही है। इसके अतिरिक्त, ऐसे भी अनेक मनुष्य हैं, जो आत्मतत्त्व को लेशमात्र भी नहीं समझ पाते। नाना मतों एवं मनोधर्मों की असंगति से किंकर्तव्यविमूढ़ हुए वे अरुचि अथवा क्रोध के आवेश में आकर मूर्खतावश निर्णय कर बैठते हैं कि ऐसा कोई तत्त्व नहीं है जो सब कारणों का परम कारण हो, अन्ततोगत्वा सब कुछ शून्य ही है। ऐसा कहने वाले निःसन्देह भवरोग से पीड़ित हैं। अधिकांश मनुष्य गाढ़ विषयासक्ति के कारण परमार्थ की उपेक्षा करते हैं; कुछ परतत्त्व से एक हो जाना चाहते हैं, तो कुछ निराश होकर सभी प्रकार की पारमार्थिकता के प्रति क्रुद्ध हो उठते हैं। इस अन्तिम श्रेणी के लोग किसी न किसी प्रकार के मादक पदार्थ का आश्रय लेते हैं और कभी-कभी तो उससे उत्पन्न मतिविभ्रम को भगवत्-दर्शन समझ लिया जाता है। परमार्थ की उपेक्षा, मुक्त हो जाने पर भी जीव-स्वरूप बना रहेगा, इस विचार से भय और निराशा को जन्म देने वाली शून्यवादी मान्यता—ये तीनों विषयासवित के ही रूप हैं; अतएव इन से मुक्त होना आवश्यक है। इन सभी दोषों से मुक्ति के लिए सद्गुरु